इकाई 4 दिक् की अवधारणा

इकाई प्रारूप

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 दिक् परिचय

4.3 दिक् साधन की विधि

4.4 दिक् साधन की विविध शास्त्रीय विधियाँ

- 4.4.1 शङ्कु द्वारा दिक् साधन
- 4.4.2 सूर्य सिद्धान्तोक्त दिक्साधन
- 4.4.3 भास्कराचार्य के अनुसार दिक्साधन
- 4.4.4 विषुव दिन से दिक्साधन
- 4.4.5 गणेश दैवज्ञ के अनुसार दिक्साधन
- 4.4.6 नक्षत्र के अनुसार दिक् साधन
- 4.4.7 ध्रुव तारे से दिक्साधन
- 4.4.8 मयोक्त दिक्साधन
- 4.4.9 दिनमान से दिक्साधन

4.5 दिक्साधन की आधुनिक विधि

4.6 प्राचीन व आधुनिक दिक्साधन विधियों में अन्तर

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 उपयोगी पुस्तकें

4.10 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- दिक् की अवधारणा से अवगत हो सकेंगे।
- दिशा साधन की विविध विधियों को जान सकेंगे।
- शङ्कु द्वारा दिक् साधन की विधि को समझ सकेंगे।
- सूर्य सिद्धान्तोक्त दिक्साधन विधि द्वारा दिक् साधन कर सकेंगे।
- भास्कराचार्य के अनुसार दिक्साधन की विधि को समझ सकेंगे।
- विषुव दिन से दिक्साधन की विधि को समझ सकेंगे।

- गणेश दैवज्ञ के अनुसार दिक्साधन की विधि को समझ सकेंगे।
- नक्षत्र के अनुसार दिक् साधन करना सीख सकेंगे।
- ध्रुव तारे के माध्यम से दिक्साधन करना सीख सकेंगे।
- मय के अनुसार दिक्साधन करने की विधि को समझ सकेंगे।
- दिनमान के माध्यम से दिक्साधन करना सीख सकेंगे।
- प्राचीन व आधुनिक विधियों द्वारा दिक्साधन को समझ सकेंगे।
- दिशाओं के व्यवहार को समझ सकेंगे और उनकी प्रत्यक्षता को सिद्ध कर सकेंगे।
- दिन व रात्रि में किस प्रकार से दिक्साधन करें यह जान सकेंगे।
- विषुवदिन के आधार पर दिक्साधन को जान कर प्रायोगिक अध्ययन में समर्थ हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

वस्तुतः मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में तीन वस्तुओं की अधिक चर्चा होती है, रोटी, कपड़ा, और मकान। हम जानते हैं कि जीवित रहने के लिए भोजन, तन ढकने के लिए वस्त्र, एवं आश्रय स्थल हेतु मकान का होना परमावश्यक है। और समान्यतः यह सर्वविदित है कि प्राणीमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है। सब जीवों में मानव बुद्धि प्रधान प्राणी है जिसका जीवन क्रम वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार अनुशासित है। अतः स्त्री पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी, आदि कष्टों से रक्षा करने वाला 'गृह' ही है। विधिवत् गृहनिर्माणकर्ता को बावडी, देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है; अतएव विश्वकर्मा आदि देवशिल्पियों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का निर्देश किया है।[1] वास्तव में हमें उपर्युक्त गृह की आवश्यकता के लिए दिक् साधन की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए दिक्-देश-काल का ज्ञान हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण तो है ही साथ ही ये तीनों अंग अर्थात् दिक्-देश-काल भारतीय ज्योतिषशास्त्र के आधारभूत अंग हैं। किसी भी देश अथवा स्थान पर काल व दिक् का होना सर्वथा स्वाभाविक है। अतः हम कह सकते है कि ये तीनों परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध से युक्त हैं। किसी भी स्थान के सम्यक ज्ञान के लिए दिशा का ज्ञान अनिवार्य है। दिशा का ज्ञान किसी भी स्थान को आधार मानकर ही किया जा सकता है। शास्त्रानुसार दिक् की परिभाषा को समझे तो कह सकते हैं कि प्राच्यादिव्यवहार हेतु दिक् अर्थात् व्यवहार योग्य जो हो उसे दिशा कहते हैं।

भारतीय ज्योतिष के इतिहास में झांकने से पता चलता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जब मानव जंगलों में रहता था तो यह देखता था कि नित्य एक समय एक बहुत बड़ा चमकीला प्रकाश युत पिण्ड निकलता है फिर एक नियत समय के अन्तर पर छिप भी जाता है तथा फिर बहुत सारे चमकीले पिण्ड आकाश में दिखाई देने लगते हैं, अंधेरा रहता है, एक शीतल रोशनी से युत

[1] स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्। जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्॥ वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुपद्यते। गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विवुधाः श्रीविश्वकर्मादयः॥ वृहद्वास्तुमाला 01.04

पिण्ड भी देखने को मिलता है। बाद में यह सिद्ध हुआ कि जो चमकीला प्रकाश युत पिण्ड दिखाई देता है वह सूर्य है। जब वह छिपता है तब रात्रि होती है और आकाश में बहुत सारे तारे चमकते है। एक शीतल प्रकाश युत पिण्ड चन्द्रमा के नाम से जाना गया। अब यह भी जाना जाने लगा कि ये पूर्व दिशा है, तथा ये पश्चिम दिशा है। यही ज्ञान हमारी शास्त्र परम्परा में एक मील का पत्थर साबित हुआ तथा इसी प्रकार के अन्य रहस्य भी हमारे सामने उजागर हुए। और तब से आज तक हम सूर्योदय और सूर्यास्त के माध्यम से पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण आदि दिशाओं को व्यवहार में प्रयोग ला रहे हैं। इस प्रकार स्थूल अध्ययन के बाद ग्रहों व नक्षत्रों का भी ज्ञान प्रकार में आया। इसी के साथ-साथ सभी दिशाओं का ठीक-ठीक ज्ञान किस प्रकार हो इस प्रकार शास्त्रों में दिक्साधन की विविध विधियों का ज्ञान हुआ। फिर इसी क्रम में दिन में, रात्रि में विषुव दिन में, ध्रुव से, शंकु आदि से दिक्साधन करने की अनेक विधियां भी है जिन्हें हम प्रस्तुत इकाई में विस्तार से अध्ययन करके समझेंगे।

4.2 दिक् परिचय

वस्तुतः प्राचीन ज्ञान के आधार पर आज हर कोई समझदार व्यक्ति दिग् ज्ञान से परिचित हैं। लगभग हर व्यक्ति पूव-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशा का ज्ञान रखता है। परन्तु फिर भी हमारे शास्त्रों में इन चार दिशाओं के अतिरिक्त भी अन्य चार दिशाओं का भी वर्णन विद्यमान है, जिनका नाम क्रमशः ईशान, आग्नेय, नैऋत्य वायव्य है। इनमें पूर्व दक्षिण के मध्य आग्नेय का स्थान है इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम के मध्य नैऋत्य व पश्चिम उत्तर के मध्य वायव्य तथा उत्तर पूर्व के मध्य ईशान दिशा रहती है। इन चारों को विदिशा अथवा कोणीय दिशा के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार से क्रमशः प्रदक्षिणी क्रम अर्थात् सृष्टिक्रम या दक्षिणावर्त क्रमशः पूर्व आग्नेय-दक्षिण-नैऋत्य-पश्चिम-वायव्य-उत्तर ईशान आदि दिशाओं का उल्लेख हमें शास्त्रों में मिलता है। इस दिशा क्रम को हम निम्न चित्र के माध्यम से भी समझते हैं –

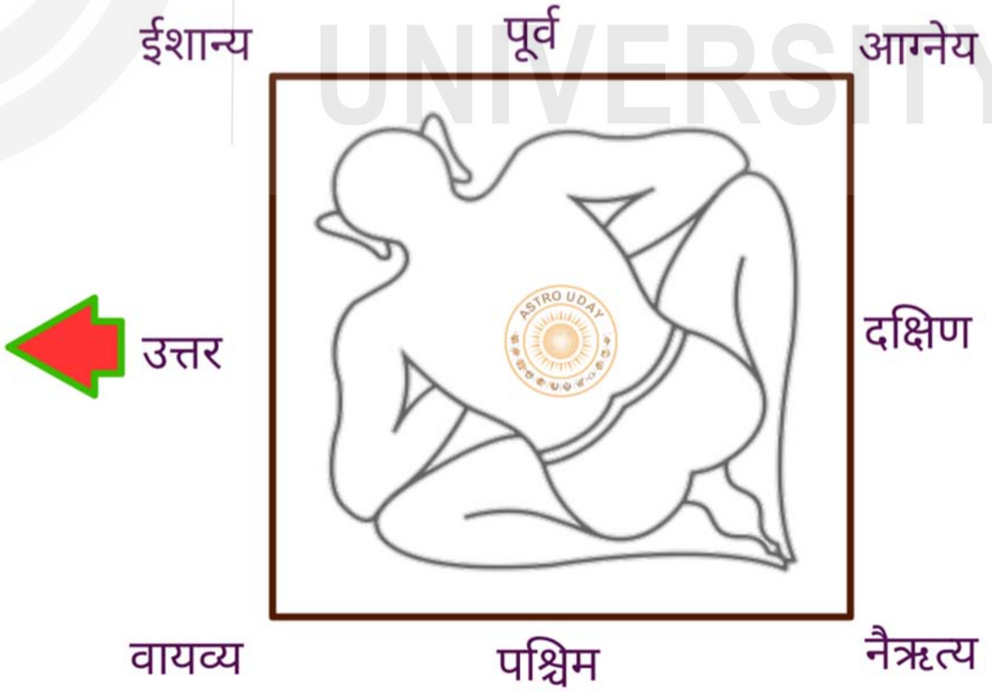

इसी प्रकार से हमने उपर्युक्त चित्र के माध्यम से वास्तुशास्त्र में उद्धृत चार दिशा पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण व चार विदिशा अथवा कोणीय दिशाओं (आग्नेय-नैऋत्य-वायव्य-ईशान) का ज्ञान प्राप्त करते हैं। विभिन्न शास्त्रकार दिशाओं के महत्त्व को समझाते हुए कहते है कि किसी भी निमार्ण जो मानवों द्वारा किया जाता है जैसे भवन-राजप्रासाद- द्वार बरामदा- यज्ञमण्डप आदि में दिक्साधन करना प्रथम व अपरिहार्य कार्य है क्योंकि दिक् भ्रम होने पर यदि निर्माण हो तो कुल का नाश होता है ।[2] दिक् साधन वास्तुशास्त्र व गणित ज्योतिष का प्रमुख अवयव है। सर्वप्रथम दिशा का साधन करना आवश्यक है क्योंकि यदि किसी कार्य को करते समय यदि दिग्भ्रम हो जाए तो परिणाम बदल जाएगा अतः विशेषरूप से वास्तुशास्त्र में दिक्साधन अपेक्षित है। दिशा का निर्धारण देश को आधार मानकर ही किया जाता है। यहां ध्यातव्य है कि देश, स्थान का द्योतक है। इसलिए निश्चित स्थान पर अक्षांश व देशान्तर के माध्यम से वहा दिक् या दिशा साधन करना सरल हो जाता है।

वस्तुतः भवन निमार्ण में दिक्साधन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। गृह निर्माण आदि के लिए जो स्थान अथवा देश हम ने शास्त्रोक्त विधि द्वारा निश्चित किया है, सर्वप्रथम उस क्षेत्र की खरपतवार आदि को साफ कर वहां की भूमि को समतल बनाकर भूमि का शोधनकर, विद्वान ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् पूजन करवाकर दिक् साधन करवाना चाहिए।

4.3 दिक् साधन विधि

प्रस्तुत इकाई में अब तक हमने जान लिया कि दिशा का महत्त्व क्या है ? से कितनी होती है, क्या ये दिशाएं वास्तविक है? हमें दिक् साधन की आवश्यकता क्यों है? आदि आदि। वस्तुतः दिशा की अवधारणा देश (स्थान) विशेष के साथ-साथ बदलती रहती है, क्योंकि भूमि के हर भाग अथवा स्थान का अक्षांश-देशान्तर भिन्न भिन्न है अतः दिशा भी अक्षांश के अनुसार परिवर्तित होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो हर अक्षांश एक दिशा को द्योतित करता है। पृथ्वी का ऐसा कोई भी भाग नहीं जहां दिशाएं नहीं है।

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्री दहनखननसम्प्लावनैः संविशोध्य
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचायित्वा द्विजेन्द्रेः।

पुण्याहं कूर्मशेषो क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे व्यतिथ्यां च कुर्मात् सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम् ॥[3]

अतः हम गणित के माध्यम से किस दिशा का स्थान किस अक्षांश के तुल्य है यह जान सकते हैं। साथ ही हम अक्षांशों के अलावा रेखांशों व देशान्तर को भी गणित के माध्यम से निकाल सकते है जिनका स्पष्ट विवरण गणित ज्योतिष में मिलता है। सामान्यतया हम इन्ही अक्षांश, देशान्तर व रेखांशों के माध्यम से कौन सा देश अथवा स्थान किस दिशा में स्थित है? इसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन व आधुनिक विधियों द्वारा हम विविध प्रकार से दिशा साधन कर सकते हैं।

---

[2] प्रसादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषताः । दिङ्मूढ़े कुलनाशः स्यात्तस्मात् संसाधयेद्दिशः ॥ वास्तुरत्नावली 3.1

[3]. बृ.वा.अ.दि.सा. श्लोक सं. 03

4.4 दिक् साधन की विविध शास्त्रीय विधियां

ज्योतिषशास्त्र में दिक्साधन करने हेतु शङ्कु का बहुत महत्त्व है। अथर्ववेद के उपवेद रूप में प्रसिद्ध वास्तुशास्त्र में भी दिग्ज्ञान के शुद्धिकरण हेतु शंकु के प्रयोग का वर्णन भी उपलब्ध होता है। ग्राम -नगर-पुर-गृह आदि के निर्माण में शंकु का पर्याप्त महत्त्व रहता है। उपर्युक्त बातों को जानकर हम यह भी कह सकते हैं कि दिक् साधन वास्तुशास्त्र का एक प्रयोजन है। शंकु मुख्यतया लकड़ी-लोहे-धातु आदि से निर्मित एक दण्डिका होती है। जिसकी लम्बाई 12,18 या 24 अंगुल की तथा उसके आधार की चौड़ाई 4, 5 अथवा 6 अंगुल की हो सकती है। इसी प्रकार यह दण्डिका सूची के आकार की होती है। जो स्थान अथवा देश या क्षेत्र जहां हमें निर्माण का कार्य करना है उस निर्धारित स्थान के केन्द्र पर ही शंकु की स्थापना की जाती है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि जहां जिस भूखण्ड पर शंकु की स्थापना की जाती है वहां उस भूखण्ड को मण्डलों में बांटा जाता है तथा इस प्रकार जिस मण्डल में स्थापित किया जाता है उस स्थान को केन्द्रीय मण्डल कहा जाता है। वस्तुतः शंकु की छाया के माध्यम से यहां दिक् साधन किया जाता है। जिसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत है-

4.4.1 शङ्कु द्वारा दिक्साधन विधि

इस इकाई के अध्ययन से हम अब तक जान चुके हैं कि दिश के सही निर्धारण में शंकु का बहुत महत्त्व है। किसी भी ग्राम -नगर-पुर-भवन आदि के निर्माण कार्य में दिक्साधन के बिना यहां वास्तुपदों के माध्यम से किये जाने कार्यों की सम्यक क्रियान्विति लगभग असम्भव है। अतः दिक् साधन करना वास्तुशास्त्र की एतिहासिक परम्परा में निर्बाध गति से होता आ रहा है। शंकु के माध्यम से दिशा साधन का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। दिशाओं पूर्व दिशा का भी आध्यात्मिक व वैज्ञानिक महत्त्व भी है। प्रातः कालीन रश्मियां हमें आरोग्य देती है, पुष्टता देती है, हमारे वातावरण को स्वच्छ व निर्मल बनाती है। एतदर्थ किसी भी निर्माण से पूर्व हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियां उस निर्माण पर निर्बाध गति से पड़े अर्थात् कोई अवरोध न रहे।

वस्तुतः क्षितिज पर जहां नित्य हमें सूर्योदय होता दिखाई देता है वह पूर्व दिशा तथा जहां नित्य सूर्य छिपता हुआ नजर आता है उसे हम पश्चिम के नाम से जानते हैं। इसमें दिग्ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता भी दृष्टिगोचर हो रही है। अतः इसी पूर्व व पश्चिम बिन्दु को अच्छे से जानने के लिए हमारे आचार्यो द्वारा अनेक विधियों का प्रतिपादन किया गया है। जिस में शंकु को आधर मानकर हम सर्वप्रथम सूर्यसिद्धान्त के अनुसार हम दिक् साधन की चर्चा करते है -

4.4.2 सूर्य सिद्धान्तोक्त दिक्साधन विधि

सूर्यांश पुरुष के उपदेशों से हमें पता लगता है कि सूर्यसिद्धान्त में भी दिक्साधन करने हेतु शंकु का प्रयोग दिखता है तथा शास्त्रों में भी दिक् साधन हेतु शंकु का प्रयोग भी हम बहुतायात में देखते हैं। वहीं आचार्य भास्कर ने अपने ग्रन्थों में क्रान्ति के संस्कार कर दिक्साधन को प्रस्तुत किया है। तथा सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में सूर्यांश पुरुष के द्वारा मय को शङ्कु के माध्यम से छाया के प्रवेश तथा निर्गम स्थान से दिक्साधन की विधि का उपदेश किया गया है। इसमें मत्स्याकार रेखा से कोणीय दिशाओं अथवा विदिशाओं का प्रमाण भी मिलता है। अतः सूर्यासिद्धान्त में दिक्साधन हेतु स्पष्ट लिखा है कि सबसे पहले जल के द्वारा अच्छी तरह शोधित कर सभी ओर

से समतल भूमि पर, पत्थर के पृष्ठ पर अथवा वज्रलेप से समतल किये हुए दिक्साधन हेतु उपयुक्त भूमि के तल पर मध्याह्नकालिक छाया से अधिक अंगुल के शंकु अथवा 12 अंगुल का शंकु के मान से एक वृत्त का निर्माण करना चाहिए। अब इस वृत्त के केन्द्र में 12 अंगुल का शंकु अथवा मध्याह्नकालिक छाया से अधिक का शंकु स्थापित करें। इस प्रकार पूर्व में कहे गये वृत्त की परिधि में शंकु की छाया दिन के पूर्वार्द्ध एवं परार्द्ध में जहां स्पर्श करे उन बिन्दुओं को अर्थात् जो पूर्वार्द्ध में स्पर्श बिन्दु है वह पश्चिम तथा जो परार्ध में स्पश बिन्दु रहेगा वह पूर्व बिन्दु हैं। अब इन दो बिन्दुओं को परस्पर एक सीधी रेखा से मिलाएंगें तो यह रेखा पूर्व व पश्चिम को जोड़ते हुए पूर्वापर रेखा कहलाएगी इसी प्रकार इस रेखा पर मत्स्य उत्पादन द्वारा उतर व दक्षिण दिशा भी साधित हो जाएगी। अर्थात् मत्स्य की पूंछ व मुंह को मिलाने से एक याम्योत्तर रेखा, बन जाएगी जिसमें कि हमें उत्तर व दक्षिण दिशा प्राप्त हो सकेगी। जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है-

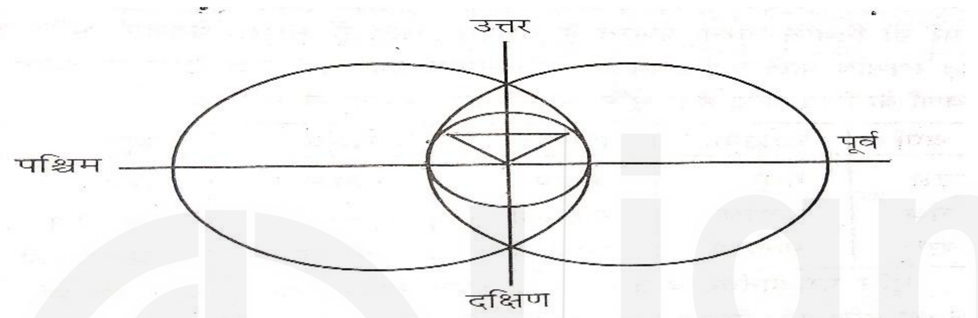

इसी प्रकार इन चारों दिशाओं के मध्य में भी मत्स्य रेखा द्वारा पूर्व उत्तर के बीच ईशान पूर्व दक्षिण के मध्य आग्नेय दक्षिण के मध्य नैऋत्य व पश्चिम -उत्तर के मध्य वायव्य नामक कोणीय अथवा विदिशा भी उपलब्ध हो जाएगी इसी प्रकार आठ दिशा जिनमें चार दिशा व चार विदिशाएँ रहेगी। जिसका प्रमाण सूर्यासिद्धान्त ग्रन्थ में इस प्रकार से मिलता है। यथा -

शिला तलेऽम्बुसंशद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्र शंक्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत्॥

तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कु कल्पना द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः॥

तत्र बिन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोन्तरा॥

याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यं मत्स्यैः संसाध्य विदिशस्तद्वदेव हि॥[4]

4.4.3 भास्कराचार्य के अनुसार दिक्साधन

ज्योतिषशास्त्र के अद्वितीय ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में आचार्य भास्कर ने शङ्कु के माध्यम से दिक् साधन करने की विधि का वर्णन किया है। जिसमें उन्होने भी जल के समान भूमि को

[4]. सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार, श्लोक संख्या 01.04

अथवा जहां निर्माण करना है उस स्थल को समतल करके वहीं बारह अंगुल के शंकु को वृत्त के केन्द्र में रख कर पूर्वाह्न व पराह्न काल में शंकु की छाया वृत्त की परीधि को जहां स्पर्श करे वह पूर्व-पश्चिम दिशा होगी अर्थात् पूर्वाह्न में जिस बिन्दु को शंकु छाया स्पर्श करे वह पश्चिम और अपराह्न काल में वृत्त की परिधि को जहां से छाया बाहर निकले उस बिन्दु को पूर्व कहेंगे। इसी प्रकार उस समय की क्रान्तियों का अन्तर करके छायाकर्ण से गुणाकर लम्बज्या का भाग देने से जो अंगुलादि मान मिले उससे अयन की दिशा मे चलित करने से पूर्व दिशा प्राप्त होती है। इस पर पूर्वापर रेखा स्थापित करके मत्स्य उत्पादन द्वारा बाकी दो दिशाओं अर्थात् उत्तर- दक्षिण दिशाओं को भी प्राप्त कर लिया जाता है। इस सन्दर्भ में भास्करचार्य जी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में स्पष्ट किया है-

वृत्तेऽम्भः सुसमीकृत क्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमाद्विभागं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्र परेन्द्रयौ दिशौ ।

तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्धाकर्णमित्याहता ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयन दिश्यैन्द्रीस्फुटाचालिता ।।[5]

4.4.4 विषुवदिन से दिक्साधन

वस्तुतः जब सूर्य विषुव राशियां अर्थात् मेष अथवा तुला में प्रवेश करता है उस दिन को ही विषुव दिन के नाम से जानते हैं। अगर हम आधुनिक कैलेण्डर के अनुसार जाने तो प्रायः 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को विषु वदिन माना जाता है। इस दिन, दिन-रात्रि दोनो बराबर रहते हैं क्योंकि इस दिन सूर्य विषुवत् रेखा के ठीक बीच से होकर अपनी परिक्रमा करता है। अतः इस दिन भी हमारे शास्त्र दिक्साधन करने का विधान करते हैं। दिक्साधन के लिए इन दिनों अर्थात् 21 मार्च व 23 सितम्बर को प्रातःकाल पूर्व की विधियों की तरह 12 अंगुल के शंकु से दिक्साधन करते हैं इसमें भी प्रातःकाल एक वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में शंकु स्थापित करके मध्याह्न से पूर्व शंकु की छाया उस वृत्त की परिधि को जहां से स्पर्श करेगी वह पश्चिम दिक् तथा मध्याह्न के पश्चात् अपराह्नकाल में वह छाया वृत्त की परिधि को जहां से स्पर्श करती है वह पूर्व दिशा होती है। इस प्रकार इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने से पूर्वापर रेखा के माध्यम से हम पूर्व-पश्चिम दिशा प्राप्त कर लेते है। अब गणितीय विधि द्वारा इस पूर्वापर रेखा पर मत्स्य रेखा द्वारा याम्योत्तर रेखा भी खींची जाती है जिसके माध्यम से हमें उत्तर तथा दक्षिण दिशा भी प्राप्त हो जाती है। इस प्रक्रिया के द्वारा हम अन्य दिनों में भी सूक्ष्म दिक् ज्ञान कर सकते है।

अन्य मत से कहे तो किसी भी दिन मध्याह्न में शंकु की सबसे छोटी छाया उत्तर दिशा की तरफ होती है वहीं इसके विपरीत दक्षिण दिशा मिलती है। इस प्रकार उत्तरदिशा से सूर्योदय की तरफ 90° अंश की दूरी पर सूक्ष्म पूर्व दिशा होती है। तथा इसी प्रकार उत्तर से सूर्यास्त की तरफ 90° अंशात्मक दूरी पर सूक्ष्म पश्चिम दिशा प्राप्त होती है। इस प्रकार विषुवदिन के आधार पर हम सरल तरीके से दिक् ज्ञान को समझते हैं।

4.4.5 गणेश दैवज्ञ के अनुसार दिक्साधन विधि

ग्रहलाधवकार आचार्य गणेशदैवज्ञ के अनुसार दिक् ज्ञान की विधि को इस इकाई में समझते है। इनके अनुसार भी सबसे पहले भूमि को समतल बनाना है फिर इस पर वृत्त बनाकर इसके केन्द्र

---

[5]. सि.शि. त्रिप्रश्नाधिकार, श्लोक संख्या 08

में 12 अंगुल का शंकु स्थापित करना चाहिए फिर हम इस शंकु की छाया प्रातःकाल जहां से प्रवेश करे वह पश्चिम दिग् बिन्दु तथा अस्तकाल में जहां से निर्गमन करे वह बिन्दु पूर्व दिशा का होता है। इन दोनों शंकु छाया के प्रवेश व निर्गमन बिन्दुओं को परस्पर मिलाकर पूर्वापर रेखा प्राप्त की जाती है। अब इस पूर्वापर रेखा के बिन्दुओं से मत्स्य रेखा का उत्पादन कर मत्स्य के पूंछ और मुख को मिलाने से हमें उत्तर व दक्षिण दिशा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अर्थ यह है कि पूर्वापर रेखा के मध्य बिन्दु पर किया हुआ लम्ब ही दक्षिण व उत्तर दिशा का द्योतक होगा। इस सन्दर्भ में आचार्य गणेश ने कहा भी है कि-

वृत्ते समभगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्धति मेरुदक् च याम्या ।।[6]

4.4.6 नक्षत्र के अनुसार दिक्साधन

नक्षत्रानुसार दिक्साधन के सन्दर्भ में वास्तुरत्नावली में उद्धृत है कि –

प्राक् साध्योज्जयिनीस्थलाद्यमदिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यन्तरा।
सौम्येतोऽग्न्युदयादुदग्ध्रुव मुखाद्दिङ्गूढके स्यान्मृतिः ।।[7]

अर्थात् भाव यह है कि उज्जयिनी जो कि वर्तमान में उज्जैन के नाम से प्रसिद्ध है वहां से दक्षिण दिशा के देश में चित्रा तथा स्वाती नक्षत्र के बीच से पूर्व दिशा होती है। ठीक इसी प्रकार उज्जैन से उत्तर दिशा में कृत्तिका नक्षत्र के उदय से पूर्व दिशा का ज्ञान करना चाहिए। रात्रि में ध्रुव तारे को देखकर उत्तर दिशा का ज्ञान करना चाहिए। इसी प्रकार से दिक्साधन करके गृह आदि का निर्माण करना चाहिए। यहां यह भी कहा है कि अगर गृह आदि के निर्माण में दिक्साधन का ध्यान नहीं दिया गया तो उसका परिणाम मृत्यु भी हो सकती है। इसी सन्दर्भ में विशेषरूप में अन्य मत भी मिलता है। यथा-

चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणाद्दक्षिणापथवासिनाम्।
प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम् ।।[8]

इसका भाव यही है कि दक्षिणपथ अर्थात् नर्मदा नदी के दाये भाग में चित्रा व स्वाती नक्षत्रों के मध्य में पूर्व दिशा जानना चाहिए। इसी प्रकार उत्तरापथ यानी नर्मदा नदी से बायीं तरफ अथवा उत्तरी भागों में कृत्तिका नक्षत्र से पूर्व दिशा जाननी चाहिए।

इसी प्रकार से कृत्तिका, पुष्य, श्रवण व चित्रा तथा स्वाती का अन्तर पूर्व दिशा है यानि जिस प्रकार से गणितीय विधि से कृत्तिका वेध की तरह पुष्य और श्रवण को भी वेध करके पूर्व दिशा को जानना चाहिए। दो घड़ी नक्षत्र के उपर चले जाने पर यह वेध करना चाहिए। यथा-

कृत्तिका श्रवणं पुष्य चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदिते पुरे ।।[9]

---

[6]. वास्तुरत्नावली, दिग्ज्ञानाध्याय - श्लोक 05

[7]. वास्तुरत्नावली, दिग्ज्ञानाध्याय, श्लोक 06

[8] वास्तुरत्नाकर 02.05

[9] वहीं 02.06

विश्वकर्मा प्रकाश में भी नक्षत्र के आधार पर दिक्साधन बताया गया है कि रात्रि में कृत्तिका नक्षत्र जिस दिशा में या जिस जगह उदय होता है वह पूर्वदिशा होती है इसी तरह श्रवण नक्षत्र भी पूर्व दिशा में उदय होता है। जैसा कि पूर्व में बता भी चुके हैं चित्रा व स्वाती के मध्य में भी पूर्व दिशा रहती है। इसी तरह 21 मार्च और 23 सितम्बर अर्थात् विषुव दिन में सूर्य उदय की दिशा पूर्व में रहती है। अन्य दिनों में वहां से हल्का सरक जाता है। इसी प्रकार इन्ही दिनों में दिन में सूर्य व रात्रि में नक्षत्र उदय की दिशा भी पूर्व ही रहती है। यदि श्रवण-पुष्य चित्रा स्वाती के मध्य पूर्वदिशा का अनुमान है तो सूर्योदय के एक घड़ी समय व्यतीत होने तक हम सटीक पूर्व दिशा समझ सकत हैं।[10]

4.4.7 ध्रुवतारे के माध्यम से दिक्साधन

वास्तुराजवल्लभ में ध्रुवतारे द्वारा दिक्साधन की विधि को बताया गया है कि ध्रुव तारेके उपर मार्कटिका नाम की दो तारिकाएँ जब भ्रमण के दौरान तारे के साथ सीधी रेखा में आ जाए, तो उस ओर ही उत्तर दिशा रहती है, मार्कटिका की दोनों तारिकाओं तथा अवलम्ब के एक सूत्र में होने पर अवलम्ब के पीछे घड़े पर दीप रखने पर दोनों तारिकाएँ एक सूत्र में आ जाए तब दीपक की तरफ वाली दिशा दक्षिण होगी और तारिकाओं के तरफ वाली दिशा उत्तर होगी। इसको समझने के लिए 32 अंगुल का वृत्त बनाएं फिर उसमें 12 अंगुल का शंकु केन्द्र में रखें जहां इसकी छाया वृत्त में प्रवेश करे वहां पश्चिम दिशा तथा जिधर सूर्योदय होगा उधर पूर्व दिशा होगी। इस प्रकार चारों दिशाओं का ज्ञान हो जाता है।[11] जैसा कि नीचे चित्र द्वारा समझ सकते हैं, यथा -

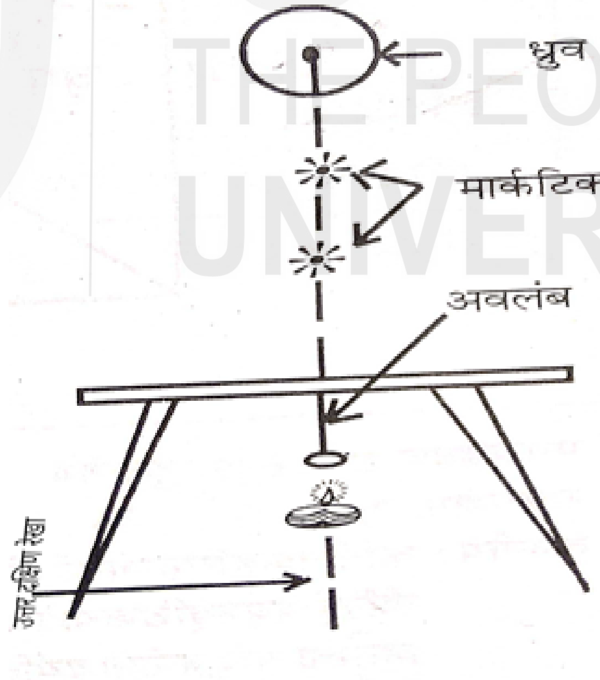

[10] . विश्वकर्माप्रकाश 54-56

[11] **तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या ककुद्। शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययोर्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलयो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे ।। वास्तुरत्नावली दिग्ज्ञानाध्याय श्लोक 08**

4.4.8 मयोक्त दिक्साधन

आचार्य मय के अनुसार प्रातःकाल समतल भूमि पर शंकु को स्थापित करने के निर्देश देते हैं। कहते हैं कि शंकु से दोगुना प्रमाण का वृत्त बनाएं। उस वृत्त पर शंकु की छाया मध्याह्न से पहले तथा बाद में वृत्त में जहां स्पर्श करती है उस स्थान को चिन्हित कर देना चाहिए। यदि इन दोनों बिन्दुओं को परस्पर जोड़ दिया जाए तो पूर्वापर रेखा बन जाती है इसमें पूर्व व पश्चिम दिशा प्राप्त हो जाती है। अब इन दोनों बिन्दुओं से मत्स्य रेखा बनाई जाए तो उत्तर दक्षिण दिशा का ज्ञान हो जाता है। इस सन्दर्भ में आचार्य और भी कहते है कि पूर्व व पश्चिम के बिन्दु को केन्द्र मानते हुए दो वृत्तों की रचना करें। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि कन्या व वृष राशि में सूर्य के रहते अपच्छाया नहीं होती जबकि मेष, मिथुन, सिंह और तुला राशि में सूर्य के रहने से अपच्छाया का प्रमाण दो अंगुल प्राप्त होता है। इसी तरह कर्क, वृश्चिक व मीन राशि में चार अंगुल तथा धनु व कुंभ राशि में सूर्य के रहते छः अंगुल और मकर राशि में सूर्य के रहते आठ अंगुल की अपच्छाया प्राप्त होती है तथा पूर्व व पश्चिम छाया में दायें व बायें उचित संशोधन करते हुए रेखा बनाकर उत्तर दक्षिण दिशा का ज्ञान करना चाहिए।[12]

4.4.9 दिनमान से दिक्साधन

दिनमानदले सप्ताङ्गुल छायाग्रतो हि यत्।
शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा।।

बृहद्वास्तुमाला के दिक्साधनाध्याय में कहा है कि दोपहर के समय सात अंगुल के शंकु के छायाग्र से शंकु केन्द्र तक सूत्र ले जाने पर वह सूत्र याम्योत्तर रेखा होगा। इसके द्वारा उत्तर-दक्षिण दिशा का ज्ञान होगा। इस प्रकार से इस रेखा पर मत्स्योत्पादन से हम पूर्व व पश्चिम दिशा भी प्राप्त कर सकते हैं।

4.5 दिक्साधन की आधुनिक विधि

अब तक इस इकाई मे हमने दिक्साधन की विविध शास्त्रीय विधियों का अध्ययन कर लिया है। परन्तु वर्तमान में दिक् साधन हेतु प्राचीन विधियों के साथ साथ कुछ आधुनिक विधियां भी प्रयोग में हैं। वस्तुतः सर्वविदित है कि वर्तमान काल यंत्रप्रधान काल है अतः लगभग हर कार्य यन्त्रों के द्वारा करने का प्रयास हो रहा है। एतदर्थ यह स्वाभाविक है कि दिक्साधन हेतु भी यंत्रों का सहारा लिया हो। इसलिए वर्तमान काल में प्राचीन विधियों के द्वारा दिक्साधन करने की विविध प्रक्रियाओं से बचकर केवल कुतुबनुमा जिसको कम्पास (compass) के नाम से जानते हैं, का प्रयोग करते है। कम्पास से दिक् साधन बहुत सरल तरीके से कर लिया जाता है। इसमें चुम्बक का प्रयोग होता है। अतः उत्तरी ध्रुव के पास चुम्बकीय ध्रुव, ऊर्जा से भरपूर एक क्षेत्र विशेष है जिसका सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रभाव पड़ता है। ये उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर सतत चलने वाली चुम्बकीय तरंगे है जो मानव मन मस्तिष्क व समस्त शरीर तथा जीव जगत पर अपना प्रभाव डालती है। इसी आधार पर दिक् सूचक यन्त्र का आविष्कार किया गया था। इस यन्त्र द्वारा हम सरलता से उत्तर दिशा का पता कर सकते है। अब हम समझ सकते हैं कि हमें यदि एक दिशा का पता लग जाता है तो हम बाकी अन्य दिशाओं का भी पता लगा सकते हैं। जैसे उत्तर दिशा का पता लगते ही हम उत्तराभिमुख होकर खडे होगे तो उत्तर से 90° अंश दायीं

12. मयमत 6.6-13

तरफ पूर्व व 90° बायीं तरफ पश्चिम हो जाएगी तथा उत्तर से ठीक 180° अंश दूरी पर दक्षिण दिशा आयेगी। इस प्रकार हम चारों दिशाओं का ज्ञान कम्पास द्वारा कर सकते हैं। यह कम्पास यन्त्र आजकल बाजार में खूब मिल रहा है।

वस्तुतः इस चुम्बकीय दिक्सूचक यन्त्र का आधार पृथ्वी का घूर्णन है क्योकि पृथ्वी के घूर्णन से एक प्रकार का चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है। यह चुम्बकीय क्षेत्र उत्तर से दक्षिण की तरफ सदा प्रवाहित रहता है। इसलिए हम उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव के नाम से इस चुम्बकीय उर्जा क्षेत्र को समझते आ रहे हैं। परन्तु अभी नई शोध से पता चला है कि ये दोनों चुम्बकीय उर्जा क्षेत्र भी स्थिर नहीं है तथा लगभग 40 से 50 किलोमीटर की गति से प्रतिवर्ष सरक रहा है अतः दिक्सूचक यन्त्र से गलती होना भी स्वाभाविक हैं। अतः यह यन्त्र आधुनिक तो है परन्तु इससे दिक्साधन करने में दोष आ सकता है अतः हमारी प्राचीन शास्त्रीय विधियों का प्रयोग करते हुए हम अगर दिक्साधन करते हैं तो सही रहेगा क्योंकि इन पद्धतियों में शंकु की छाया से दिशा ज्ञान किया जाता है।

4.6 दिक् साधन की प्राचीन व आधुनिक विधियों में अन्तर

वस्तुतः हम दिक्साधन करने हेतु प्राचीन व नवीन दोनों ही प्रकार की विधियों को अपना सकते हैं परन्तु इनमें दिक्ज्ञान की शुद्धता व सटीकता होना पहली आवश्यकता है। हमारे शास्त्रों में शास्त्रकारों ने दिक्साधन का विशद विवेचन करके एक विशिष्ट विषय के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत जाता है। इसके माध्यम से विविध कार्य व गणनांए सम्पादित की जाती हैं। सामान्यतः व्यवहार में लायी जाने वाली दिशाओं में अगर कुछ अंशात्मक ही दोष हो अर्थात् मात्र कुछ अंशों का ही अन्तर हो तो वह ग्राह्य है अतः उसे दोषकार नहीं मानते हैं। किन्तु जब हम गणितीय पद्धति से गणना के क्षेत्र में अंशात्मक अन्तर पाते हैं तो परिणाम बदल जाते है जो कि शास्त्रीय प्रमाणों में अन्तर उत्पन्न कर सकता है।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक नवीन दिक् साधन विधियां भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि इस इकाई के अध्ययन से हमने जाना कि प्राचीन विधियों में सूर्य की गति ध्रुव की स्थिति, नक्षत्रों की स्थिति दिनमान विषुवदिन आदि के आधार पर दिक् साधन करते हैं। जबकि वर्तमान में दिक्सूचक यन्त्र भूमि के चुम्बकीय प्रभाव के कारण कार्य करता है। हालांकि इनमें दोष भी उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे एक साथ पास-पास में दो चुम्बकीय यन्त्र रखें हो तो दोनों में परिणाम भिन्न आ सकते हैं। किसी बड़ी चुम्बक के क्षेत्र में आने से भी कम्पास आदि यन्त्र सही-सही परिणाम नहीं दे पाते हैं। इसलिए प्राचीन विधियां प्रत्यक्ष सिद्ध होती है। आधुनिक चुम्बकीय दिक् साधक यन्त्र में कुछ वैज्ञानिक त्रुटियां भी रह सकती है क्योंकि प्राचीन विधियां शंकु आदि पर आधारित होती है इसलिए खगोल पर वास्तविक उत्तर दिशा प्राप्त करने में अन्तर आ सकता है। चुम्बकीय (कम्पास) यन्त्र में सूई का जीरो अंश उत्तर दिशा का सूचक है जो कि पृथ्वी के उत्तरीध्रुव का 90° अंश अक्षांश को नहीं दर्शाता अपितु यह लगभग 82 अंश उत्तरी अक्षांश को दिखाता है। इसलिए आठ अंश का अशुद्धि तो साक्षात् दिख ही रही है। अतः कार्य की स्थिति को देखते हुए सुधीजन दिक्साधन विधि का चयन कर सकते हैं।

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने दिक्साधन की अनेक विधियों का अध्ययन करके यह पाया है कि मानव व्यवहार हेतु दिशाओं का ज्ञान होना परमावश्यक है। प्राचीन काल से ही दिशाओं के साधन व उनके स्वरूप को समझने के लिए इनका सटीक ज्ञान प्रमुखतः सूर्य के माध्यम से ही किया जाता रहा है। जहां एक तरफ शंकुच्छाया के माध्यम से दिशाओं का प्रतिपादन एकदम वैज्ञानिक है। वहीं वर्तमान काल के वैज्ञानिक युग में दिशाओं के परिज्ञान हेतु मात्र दिक्सूचक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। जो कभी-कभी पूर्णतया शुद्ध परिणाम नहीं देते हैं। अतः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि दिक्ज्ञान के लिए हमारी शास्त्रीय प्राचीन विधियां ही उपयुक्त व तर्कसंगत हैं।

4.8 शब्दावली

दिक् = दिशा**, प्राची** = पूर्व दिशा, **ईशान** = उत्तर पूर्व दिशा के मध्य की कोणीय दिशा, **आग्नेय**= पूर्व दक्षिण दिशा के मध्य की कोणीय दिशा, **नैऋत्य** = दक्षिण-पश्चिम के मध्य की कोणीय दिशा, **वायव्य**= पश्चिम-उत्तर दिशा के मध्य की कोणीय दिशा, **सृष्टिक्रम** = दक्षिणावर्त, **राजप्रासाद** = राजा का भवन, **ध्यातव्य-**ध्यान देने योग्य, **आक्षांश**=देश विशेष से ध्रुव की अंशात्मक उंचाई, **देशान्तर -** दो रेखा देशों के मध्य का अन्तर, **शंकु**=12 अंगुल की काष्ठ अथवा धातु से बनी छडी, **विषुव दिन** = जिस दिन सूर्य भूमध्य रेखा से होकर गुजरता है। **विदिशा**=दो मुख्य दिशाओं के मध्य स्थित कोण, **याम्योत्तर** = दक्षिण उत्तर, **पूर्वापर** = पूर्व-पश्चिम, **अपराह्न**= आधे दिन के बाद का भाग, **निर्बाध** = बाधाओं से रहित, **रश्मियां** = किरणें, **निर्मल**=मल रहित, **मत्स्य** - मछली, **उत्तरापथ** = उत्तर दिशा की तरफ, **दक्षिणापथ**= दक्षिण दिशा की तरफ, **यन्त्र**= उपकरण।

4.9 उपयोगी पुस्तकें

वास्तुरत्नावली- डॉ श्रीकृष्णाजुगनू - चौखम्भा ओरियन्टालिया दिल्ली

बृहद्वास्तुमाला- डॉ अशोक थपलियाल, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन -दिल्ली

विश्वकर्माप्रकाश- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन- वाराणासी ।

वास्तुसार- प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी जी- ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली

सूर्य सिद्धान्त- कपिलेश्वर शास्त्री- चौखम्भा संस्कृत सीरिज ऑफिस- वाराणासी

सिद्धान्तशिरोमणि- आचार्य भास्कर- सम्पादक बापूदेव शास्त्री-

चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस वाराणसी

4.10 बोध प्रश्न

1. वास्तुशास्त्र में दिक् साधन के महत्व को अपने शब्दों में स्पष्ट करें।
2. वर्तमान में वास्तुशास्त्रियों द्वारा दिक्साधन कैसे किया जा रहा है ? तथा यह कहां तक सही है ? टिप्पणी लिखें।
3. वास्तुशास्त्र में कितनी दिशाओं का उल्लेख है ? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

4. रात्रि में दिक् साधन कैसे करते हैं ? विस्तार से लिखें।

5. विषुवदिन और इसका महत्त्व क्या है ? विस्तार से लिखें।

6. सूर्यसिद्धान्तोक्त दिक् साधन कैसे करते हैं ? टिप्पणी लिखें।

7. दिक् साधन के सन्दर्भ में आचार्य मय द्वारा प्रदर्शित विधि को स्पष्ट करें।

8. नक्षत्र द्वारा दिक् साधन को स्पष्ठ करें।

9. आचार्य गणेश देवज्ञ के अनुसार प्रदर्शित दिक् साधन विधि को स्पष्ट करें।

10. वास्तुशास्त्र के आचार्य शंकु के माध्यम से दिक् साधन कैसे करते हैं ? स्पष्ट करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY